International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 46-47

पाणिनीय अष्टाध्यायी में अपादान कारक की समीक्षा

सुशीला आर्या

शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

महर्षि पाणिनि अपादान कारक के विषय में अपनी अष्टाध्यायी में 'ध्रुवमपायेऽपादानाम्'[1] सूत्र द्वारा 'अपादान' का वास्तविक आधार मानते हैं 'अपाय' को। 'अपाय' का अर्थ विघ्न और विनाश भी हो सकता है। किन्तु, अप+अय के रूप में 'अपाय' का शाब्दिक अर्थ दूरगमन या दूरीभाव सिद्ध होता है। इसे हम 'विश्लेष' भी कह सकते हैं। 'अपाय' इससे विपरीत स्थिति है। उसमें 'सहभाव' और 'निकटता' की बात रहती है। इस 'अपाय' में विलगाव और दूरी का भाव प्रधान रहता है।

'ध्रुवम्' को लेकर विद्वानों में परस्पर मतभेद दिखाई देता है भर्तृहरि को भी इसका औचित्य सिद्ध करने में पर्याप्त श्रम करना पड़ा है।[2] यदि पाणिनि की परिभाषाओं की पद्धति पर चलकर इस सूत्र का विच्छेद किया जाए, तब इसका स्वरूप इस प्रकार ठहरता है: 'अपादानं ध्रुवम्'। अर्थात्, 'अपाय' की स्थिति होने पर अपादान कारक का प्रयोग निश्चित और स्थिति है। प्रश्न है 'अपाय किसका किससे?' इसका तथा अन्य कई प्रश्नों का मूल परिभाषा से कोई सम्बन्ध नहीं। किन्हीं दो वस्तुओं में परस्पर दूरी या विश्लेष का भाव वक्तव्य बनते ही 'अपादान' निश्चित रूप से प्रयोज्य बन जाता है।

संस्कृत के आंग्ल वैयाकरणों ने इसे 'एब्लेटिव्' नाम से पुकारा है। वहां भी पृथक्ता और विलगाव के इसी सत्य का आश्रय उन्होंने लिया है। वस्तुत: यूरोपीय भाषाओं में षष्ठी और पंचमी विभक्ति का रूप हर तरह से एक ही है। मूलत: संस्कृत प्रत्ययों में भी 'अस्' (ङसि, ङस्) के रूप में ऐसा ही माना गया है। पर फिर भी बहुवचनादि में वहां भेद स्पष्ट है। यूरोपीय भाषाओं में तो इन दोनों का रूप ही एक मान लिया गया है। 'जेनिटिव' के रूप में वहां एक ही कारक का प्रयोग, कम से कम एक ही विभक्ति के रूप में, अवश्य ही किया जाता है। हिन्दी में यह स्थिति तृतीया और पंचमी विभक्तियों, अथवा करण और अपादान कारकों, के बीच दिखाई देती है। अंग्रेजी में दूरी का भाव 'फ्रॉम' जैसे निपात के प्रयोग से पूरी तरह व्यक्त हो जाता है। हिन्दी में 'दूरी' का यह बोध, शब्दाश्रित न होकर मावनाश्रित है। अत: आवश्यक बात 'दूरी का बोध' है, अन्य कुछ नहीं।

करण में अपादान

अत: ऐसे प्रयोगों में एक ही उत्तर तर्कसंगत ठहरता है: 'यहाँ करणत्व के भीतर ही 'अपाय' या 'अपादानत्व' छिपा हुआ है। दोनों की इस सहवर्त्तिता में यहां करण के द्वारा ही अपादान का भी अभिधान हो रहा है।'[3] भर्तृहरि इस वैज्ञानिक सत्य को कहने के बाद एक मूल सत्य की ओर फिर से ध्यान खींचते हैं: साधनभूता एक ही शक्ति विविध रूपों में स्थित रहती है। वस्तुत: वे तो सारी साधन-कल्पना का ही विवक्षा पर आधारित मानते हैं। यही कारण है कि वे 'करण' और 'अपादान' को- दोनों को - 'निमित्त' के अन्तर्गत ही मानकर इन्हें दो विविधतामय संज्ञामात्र मानते हैं। 'शसक्ति' एक होकर भी 'करण' और 'अपादान' के रूप में द्विधा-विभक्त होकर स्थित है।[4] एक ही शब्द में द्विधा प्रयोग एकत्र सम्भव नहीं है, न वांछित है। इस आधार पर 'धनुष: विध्यति' और 'धनुषा विध्यति' में कोई अन्तर नहीं है। इससे भी आगे बढ़कर वे कहते हैं कि 'अपाय' की बात को हर जगह - अन्य अपादानसदृश प्रयोगों में भी - खींचतान कर सिद्ध करने का यत्न नहीं करना चाहिए। वस्तुत: वे अपादान के विषय न होने पर भी उस रूप में प्रयोग किये जाते हैं। अपादान के अन्तर्गत उनका ग्रहण या उल्लेख तो अबुधजनों को समझाने के लिए हुआ है।[5]

निष्कर्ष

इस प्रकार अपादान कारक का प्रयोग भी मूलत: बुद्ध्याश्रित ही है। अवधि से अपाय (दूरगमन) की भावना मुख्य होते हुए भी इसका प्रयोग कुछ अन्य अर्थों में किया जाता है। पाणिनि ने ऐसी अर्थ-स्थितियों की चर्चा, संस्कृत-प्रयोगों की दृष्टि से, सात सूत्रों में की है।[6] निश्चय ही इन विशेष स्थितियों में 'अवधि' की भावना विद्यमान नहीं है। 'तुलना' भी उतनी अधिक नही है। फिर भी, इनमें अपादान का प्रयोग वैध रूप में प्रचलित है ही।

वैचारिक रूप से इन प्रयोगों से भी कुछ में 'अवधि' की कल्पना केवल कुछ अंशों तक ही तर्क-संगत ठहराई जा सकती है। 'दिक्' और 'काल' की दृष्टि से इस कारक को 'कर्म का विपर्यय' कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. पा. 1.4.24
2. वा. 3.7. 137-9
3. वा. 3.7.145
4. वा. 3.7.146
5. वा. 3.7.147
6. पा. 1.4.25 से 31